The English version of this is expected to be ready by mid-May.

Draft for discussion
April 2024

विद्या आश्रम का शोध कार्यक्रम
प्रस्ताव

1995 से अब तक लोकविद्या विचार और दर्शन पर जितने भी चिंतन, प्रकाशन और संगठनात्मक व रचनात्मक कार्य हुए हैं वे एक नई विश्वदृष्टि का व्यापक फलक बनाते हैं. सृष्टि और समाज में न्याय, त्याग और भाईचारा पर गढ़ी हुई बुनियादी सत्ता का सत्य 'लोकविद्या' और 'सामान्य जीवन' के आपसी गतिशील संबंधों में बसा दिखाई देता है. इस सत्य के उजाले में समाज की परिवर्तनकारी शक्तियों की खोज, निर्माण, संवर्धन, नवीनीकरण आदि के प्रयास मनुष्य और मनुष्य समाज की गतिविधियों के उन विविध पक्षों से साक्षात्कार करा सकते हैं, जो एक नई और बेहतर दुनिया को बनाने के आधार होंगे.

इस ओर बढ़ने की दृष्टि से एक शोध का विचार पत्र प्रस्तुत है.

अधिकांश विचारों की व्याख्या और सन्दर्भ विद्या आश्रम की वेबसाईट www.vidyaashram.org और लोकविद्या जन आन्दोलन के ब्लॉग www.lokavidyajanandolan.blogspot.com तथा दर्शन अखाडा के ब्लॉग www.darshanakhadablog.wordpress.com पर मिलेंगे.

1. शोध के बारे में दो शब्द

संक्षेप में कहें तो यह शोध बहुजन-समाज की उज्जवल परम्पराओं की खोज है, जो हमें एक नये समकालीन राजनैतिक चिंतन की ओर ले जाये.

कुछ प्रमुख बिंदु हैं -

- सामान्य जीवन की परंपरा बहुजन-समाज की जीवन परंपरा है.
- लोकविद्या की परम्परा बहुजन-समाज की ज्ञान परम्परा है.
- स्वराज की परंपरा बहुजन-समाज की राज परंपरा है.
- संत परम्परा बहुजन-समाज की परंपरा है.
- स्वदेशी दर्शन बहुजन-समाज का दर्शन है.
- पंचायत की परंपरा बहुजन समाज द्वारा समाज के संगठन, संयोजन एवं नियमन (कानून एवं व्यवस्था) की परंपरा है. इसे इस देश के विधि-विधान की मौलिक परंपरा के रूप में देखा जा सकता है.
- समाज के वित्तीय संगठन, उत्पादन और लेन-देन की परम्पराएँ बहुजन-समाज में प्रचलित वितरित व्यवस्थाओं के विचारों के अनुकूल रही हैं.
- इन सभी बिंदुओं को आपस में गूंथना ही यह शोध है. कहा जा सकता है कि इस गूंथने का सक्रिय गतिशील रूप एक बहुजन ज्ञान संवाद है.

ये इस शोध की पूर्व मान्यताएं (हाइपोथिसिस) हैं. शोध की बनावट और उसका विस्तार इस दृष्टि से किया जाएगा कि इन मान्यताओं अथवा इस समझ के विभिन्न बिन्दुओं पर प्रकाश पड़े. वे कितने सही हैं और कितने गलत, तथा उनका सार व स्वरुप क्या है, यह कई कोणों से सामने आए.

'सामान्य जीवन' और 'लोकविद्या' के गतिशील संबंधों पर एक व्यापक दृष्टि बनाने के रास्ते में कई चुनौतियाँ सामने खड़ी मिलती हैं. इन चुनौतियों को पहचानने और उनसे मुकाबला करने की दिशा और तरीकों पर एक सरसरी निगाह निम्नलिखित बिन्दुओं के मार्फ़त रखी गई है.

2. 'राजनीतिक विचार और राजनीति' के बंधन

- **'सामान्य जीवन' के उल्लंघन के विरुद्ध संघर्ष** को बुनियादी अर्थों में राजनीतिक कहा जा सकता है।
- **समकालीन विश्व में राज्य, साइंस और पूंजी सामान्य जीवन के उल्लंघन के प्रमुख स्रोत हैं।** इसलिए, साइंस के विरुद्ध, पूंजी के विरुद्ध और राज्य के विरुद्ध संघर्ष बुनियादी तौर पर राजनीति को परिभाषित करते हैं. आम बोलचाल की भाषा में इन्हें परिवर्तनकारी राजनीतिक गतिविधि कहा जा सकता है।
- लेकिन इससे एक अजीब स्थिति पैदा हो जाती है. इस प्रकार वह गतिविधि राजनीतिक गतिविधि कहलाती है जिसका उद्देश्य **'राजनीतिक समाज'** को उखाड़ फेंकना है। **राजनीतिक समाज वह है, जो साइंस, पूंजी और राज्य के उद्भव के साथ बना है।** अब तक लगभग सभी भाषाएँ, कम से कम सार्वजनिक क्षेत्र की भाषा, मुख्यतः इस राजनीतिक समाज की भाषा हैं। इसलिए सही ढंग से कहें तो मुक्ति के बुनियादी संघर्ष **'राजनीतिक संघर्ष'** नहीं हैं और फिर भी आम बोलचाल में उन्हें 'राजनीतिक संघर्ष' कहा जाता है.
- एक बुनियादी ज्ञान आंदोलन के संदर्भ में यह शब्दावली या भाषाई समस्या हल करने के उपाय मिलते हैं. इसलिए, यदि कोई बुनियादी, परिवर्तनकारी अर्थ में राजनीति करना या उसके बारे में बोलना चाहता है तो उसे अपनी गतिविधि और संवाद को **'ज्ञान आंदोलन'** में अवस्थित करना होगा. इनमें से कुछ बातें बहुत स्पष्ट हो जाती हैं जब हम गांधी के समय में इन बातों को घटित होते देखते हैं. हम गांधी को एक नए ज्ञान आंदोलन और एक नए राजनीतिक आंदोलन दोनों के निर्माता के रूप में देख सकते हैं और दोनों को उचित रूप से बुनियादी परिवर्तनकारी आंदोलन कहा जा सकता है.
- **तब हम देखेंगे कि एक बुनियादी राजनीतिक आंदोलन लोगों के ज्ञान आंदोलन से अलग नहीं हो सकता।**
- अगर हम इस देश को **'इंडिया'** और **'भारत'** के रूप में विभाजित देखें तो आजादी के बाद की सारी राजनीति इण्डिया की राजनीति दिखाई देगी. यदि साइंस, राज्य और पूंजी को एक-दूसरे के साथ गुंथे हुए देखेंगे तो आप इण्डिया को देखेंगे. **'सामान्य जीवन' को उसकी पूरी प्रतिष्ठा बहाल करने की आवश्यकता का दावा जब लोगों के ज्ञान आंदोलन (लोकविद्या आंदोलन) के साथ आएगा तब भारत के लायक राजनीति बनेगी.**

- यह देश 'भारत' और 'इंडिया' के रूप में विभाजित है तथापि यह एक गतिशील परिस्थिति है और दोनों को एक दूसरे में भी देखा जा सकता है। कोई भी आसानी से भारत में जीवन और आकांक्षाओं के विभिन्न पहलुओं को इंगित कर सकता है, जो इण्डिया में जीवन और आकांक्षाओं के समान हैं. इसी तरह इण्डिया में जीवन के उन विभिन्न पहलुओं को देखा जा सकता है जो भारत में प्रचलित हैं. 'सामान्य जीवन' का विचार विभाजन को पाटना है, नया विभाजन पैदा करना नहीं. सामान्य जीवन केवल सामान्य पुरुषों और महिलाओं का जीवन नहीं है, यह सर्वव्यापी है। संत-परंपरा नित नवीन परिस्थितियों (उल्लंघन, हाशियेकरण, दमन आदि) में विचार और व्यवहार में सामान्य जीवन के नव-निर्माण और पुनर्सृजन की परंपरा है.
- दर्शन परम्पराएँ जिनमें सत्य, स्वायत्तता और सहजीवन (भाईचारा) के विचार प्रमुख भूमिका में होते हैं, वे ही 'राजनीतिक-समाज' के विकल्प में 'वितरित सत्ता' अथवा 'स्वायत्त इकाइयों के सहजीवन' पर आधारित समाजों के संगठन और सञ्चालन का विचार ला सकते हैं. यह स्वराज का विचार है.

3. सामाजिक विचार

- राजनीतिक दृष्टि से देश का सामान्य जन-समाज एक दो राहे पर खड़ा है. या तो वह समाज में बड़े संरचनागत परिवर्तन की ओर आगे बढ़ने का रास्ता चुने या फिर वर्तमान व्यवस्था में अपने लिए अधिक से अधिक जगह प्राप्त करने के रास्ते बनाये. ये दोनों बातें अलग तो हैं किन्तु एक दूसरे से जुड़ी हुई भी हैं तथा समाज से सरोकार रखने वालों के बीच लम्बे समय से बहस का विषय रही हैं और रहेंगी.
- देश के सामान्य जन-समाज यानि बहुजन-समाज की सार्वजनिक उपस्थिति, राजनीतिक भूमिका और एक समाज के रूप में गोलबंदी आज एक नए मोड़ पर है. जन गणना में जाति की पहचान लिखी जाने के अभियान के रूप में यह दिखाई दे रहा है. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सभ्यता, संस्कृति और नस्ल के मुद्दे बहस में आ चुके हैं. इसलिए अब बराबर के सम्मान और आय के पक्ष में परिवर्तन की राजनीति की दिशा का पुनर्निर्माण आवश्यक है. जाति का विमर्श बहुजन-समाज का विमर्श ही है. अपने समाज पर फिर से एक नज़र डालने की ज़रुरत है.
- बहुजन-समाज सामान्य लोगों का समाज होता है (विशिष्ट जनों का नहीं). इसे अलग-अलग ढंग से जातियों के मार्फ़त, समाज के रूप में, बिरादरियों के मार्फ़त, मुख्यधारा से बहिष्कृत लोगों के रूप में, अंग्रेजी राज के पहले से अस्तित्व रखने वाली सामाजिक संरचनाओं के रूप में अथवा सामाजिक और शैक्षणिक तौर पर पिछड़ों के रूप में पहचाना जाता है. कौन सी पहचान को प्राथमिकता दी जाए अथवा पहचान का वरीयता क्रम क्या हो यह इससे तय होता है कि आप के उद्देश्य क्या हैं, और यह कि समाज निर्माण, परिवर्तन और प्रगति के आप के विचार क्या हैं?
- यह देश और यहाँ का धर्म बहुजन-समाज का है. संत परम्परा बहुजन समाज के विचारों की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है. इसने धर्म को लोक-भागीदारी के मार्फ़त लोकधर्म के रूप में खड़ा किया. अब हिंदुत्व के नाम से एक नया धर्म इन पर थोपा जा रहा है. इतिहास के अधिकांश काल में बहुजन समाजों के ही राजा रहे. ध्यान रहे कि उनके राज में सामान्य जीवन और स्वायत्तता का सम्मान रहा. यह ज़रूर हुआ कि अलग-अलग समयों पर ब्राह्मणों, मुगलों और अंग्रेजों ने इन पर राज करने की व्यवस्थाएं बनाईं. इसका अर्थ यही है कि बहुजन-समाज के पास जीवन संगठन,

राज और समाज-सञ्चालन का दर्शन रहा है, जिसके बल पर सभ्यता और संस्कृति के कीर्तिमान गढ़े गये हैं.

- बहुजन-समाज अपना रास्ता अपने दृष्टिकोण, दर्शन और हितों के जरिये चुने इसके लिए यह आवश्यक प्रतीत होता हैं कि बड़े पैमाने पर इस विषय पर सार्वजनिक बहस हो. यह बहस आज के प्रभु वर्गों के विचारों से स्वतंत्र होना ज़रूरी है और इसलिए बहुजन-समाज के दर्शन, इतिहास, राजनीति, और संभावी भविष्य को लेकर विस्तृत शोध व अनुसंधान की ज़रूरत है. यह अनुसंधान विश्वविद्यालय के अनुसंधान से सर्वथा अलग होगा क्योंकि विश्वविद्यालय के अनुसंधान पर पश्चिम की आधुनिक दार्शनिक परम्पराओं और ब्राह्मणों के विचारों का आधिपत्य है और उसमें बहुजन-समाज के दर्शन और उनके दर्द के लिए कोई स्थान नहीं है.

- बहुजन-समाज यह अनेक स्वायत्त लघु समाजों से बना समाज रहा है. समाज संगठन के ये विविध प्रकार लोकविद्या और सामान्य जीवन में गतिशील संबंधों के चलते नितनवीन और विविध आकार लेते रहे हैं. इनके निर्माण, गति और स्थायित्व की प्रक्रिया वितरित सत्ता के जल से सींची जाती रही हैं. एक तरह से लोकविद्या, सामान्य जीवन, समाज और स्वराज ये परस्पर नवीन और पुनर्निर्मित होते रहते हैं.

- लोकविद्या परम्परा बहुजन समाज की ज्ञान परम्परा है. आज की दुनिया में इस ज्ञान परम्परा का सामाजिक हस्तक्षेप स्वदेशी दर्शन और स्वराज के बीच की कड़ी बनाता है.

4. ज्ञान, उत्पादन, तकनीकी, व्यवस्था और प्रबंधन

- मनुष्य के ज्ञान और उसकी रचनात्मक ऊर्जा का प्रेरणास्रोत कहाँ होता है, इस बारे में कई तरह के विचार होते हैं. एक दृष्टिकोण में इसे मनुष्य की आवश्यकताओं में देखा जाता है, किसी ने शासन की ज़रूरतों में, तो किसी ने विकास की आवश्यकताओं में देखा, कोई खुशहाली के व्यापक उद्देश्यों के मार्फ़त देखता है, तो कोई नैतिक मूल्यों में उसकी जड़ें मानता है.

- उत्पादन, वितरण, प्रबंधन, संचार-संपर्क और व्यवस्था का ज्ञान, समाज संगठन और सञ्चालन के मौलिक सिद्धांतों को आकार देता है. बहुजन समाज में यह ज्ञान कुछ क्षेत्रों में प्रखर रूप में देखा जा सकता है. विशेषकर महिलाओं और छोटी पूँजी पर जीवनयापन करने वाले समाजों में यह अधिक स्पष्ट है. इनमें, न्याय, स्वायत्तता, मर्यादा, प्रेम, भाईचारा, त्याग और सहजीवन के व्यवहारिक रूप सामने आते हैं.

- बहुजन-समाज द्वारा सिद्धांत, व्यवहार और आवश्यकता आदि को 'सामान्य जीवन' और 'लोकविद्या' की कसौटी पर आंकने का अर्थ क्या है? समाज में किसी भी नए कदम और रचना के निर्णय और निर्माण के लिए, उसके लिए लगने वाले संसाधन, ज्ञान, तकनीकी, प्रक्रिया, उपभोग, पैमाना, स्वास्थ्य पर प्रभाव, अन्य जीवों और पदार्थों पर आने वाले परिणाम, आवश्यक संस्थाओं का निर्माण और संचालन आदि प्रत्येक पक्ष को विस्तार और गहराई से देखा जाता है.

5. दर्शन, दार्शनिक संवाद और ज्ञान आन्दोलन

- ऐसा कहा जाता है कि आज तकनीकी और विशेषज्ञता का दौर है. ऐसा कहने वाले व्यापक मानव हित तथा दर्शन इत्यादि पर चर्चा को गैरज़रूरी समझते हैं. तथापि वास्तविकता यह है कि सभी कार्यों में कोई न कोई दर्शन निहित होता है और मानव जीवन पर होने वाले दूरगामी नतीजे भी निहित होते हैं. व्यापक बहस और दर्शन से किनारा कसना आत्मघाती है. प्रकृति का विनाश और

मनुष्य और मनुष्य के बीच भयानक अंतर ये सब ऐसे ही नतीजे हैं. दूसरे महायुद्ध के बाद, यानि 20 वीं सदी के उत्तरार्ध में, दुनिया की पुनर्रचना में दर्शन को उचित स्थान नहीं दिया गया, न पश्चिम के देशों में और न नवोदित राष्ट्रों में. यह एक बड़ा कारण है कि आज दुनिया गरीबी, गैर-बराबरी, भयानक युद्धों और जलवायु संकट से घिरी हुई है.

- 20 वीं सदी के पूर्वार्ध में साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद से संघर्ष के दौरान वैश्विक दक्षिण के अनेक देशों में दर्शन पर व्यापक चर्चाएं हुई हैं. इनमें से बहुत सी अपनी स्वदेशी परम्पराओं की समकालीन पुनर्रचना के रूप में सामने आईं. 1939 से 1945 के बीच यूरोप से शुरू हुए महायुद्ध के बाद तमाम उपनिवेश स्वतंत्र हुए तथा साम्राज्यवाद को पीछे हटना पड़ा और अनेक देशों में आज़ाद सरकारें बनीं. किन्तु इन देशों में पश्चिम के देशों जैसी राज्य प्रणाली, उन्हीं के जैसा औद्योगीकरण तथा विश्वविद्यालयों में पश्चिमी सोच के दबदबे के चलते स्वदेशी दार्शनिक परम्पराओं का स्थान समाज में गौण हो गया. इससे समाज की प्रमुख धारा और सामान्य लोगों के बीच का दार्शनिक संवाद टूटता चला गया. यह एक भीषण परिस्थिति है, जिसमें समाज के उत्थान और पुनर्रचना के लोकप्रिय मूल्यों का निर्माण रुक जाता है और समाज एक अवनत अवस्था में किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है. ऐसा नहीं है कि इस दौर में हुई वार्ताओं का स्वदेशी के विचार के साथ कुछ लेना-देना नहीं है . जन आंदोलनों के अंतर्गत तथा लोकहित के मुद्दों पर संघर्षों के सन्दर्भ में बुनियादी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक चर्चाएं हुईं, किन्तु ये चर्चाएं स्वदेशी दार्शनिक परम्पराओं से न जुड़ सकीं.

- 20 वीं सदी के अंत में वैश्विक स्तर पर बड़े आर्थिक, राजनैतिक और तकनीकी (इन्टरनेट) परिवर्तनों के साथ एक नए युग की शुरुआत हुई है जिसे हम संवाद का युग कह सकते हैं. इस दौर में जहाँ एक तरफ पश्चिम में उपजी और दुनियाभर में फैली कई दर्शन धाराओं की प्रासंगिकता पर सवाल खड़े होने लगे, वहीँ दर्शन की स्वदेशी धाराओं से प्रेरणा लेने के मौके पैदा हुए हैं, हालाँकि **सामान्य लोगों के साथ दार्शनिक संवाद टूटने का संकट बहुत बड़ा है. इसके चलते विचारों के पुनर्निर्माण और दर्शन के पुनरोदय के स्रोत सूखे नज़र आते हैं.** ऐसे समय में दर्शन पर खुल कर बहस की आवश्यकता होती है. यह आवश्यक होता है कि दर्शन पर संवाद एक शक्ति के रूप में उभरे.

- दर्शन आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों एक साथ होता है. वह वैयक्तिक और सामाजिक दोनों एक साथ होता है. विचार दार्शनिक तभी होता है जब वह सीमाओं में नहीं बंधता. दर्शन को किसी शैक्षणिक योग्यता, विशेषज्ञता अथवा समाज में विशेष स्थान की आवश्यकता नही होती. यह निर्मल और सहज बुद्धि से दुनिया को देखने का प्रयास है. दर्शन की इस समझ के साथ इस उद्देश्य से देखने कि दुनिया को बेहतर बनाने के लिए आज मनुष्य और समाज की शक्ति के स्रोत क्या हैं और कहाँ हैं ?

- सहज बुद्धि और शक्ति के स्रोत दोनों उतने ही परिवर्तनशील होते हैं जितना परिवर्तनशील सामान्य समाज व जीवन होता है. इसलिए यहाँ दर्शन के वे रूप सामने आते हैं, जिन्हें किन्हीं पूर्व मान्यताओं के अंतर्गत समझना अथवा स्थापित करना एक असहज कार्य होगा.

- बहुजन समाज की दर्शन परम्परा संत परंपरा में अपनी सुन्दर अभिव्यक्ति पाती है. यह समाज के निर्माण और पुनर्निर्माण की वह परम्परा है जिसे सत्य के निर्माण और पुनर्निर्माण के रूप में भी देखा जा सकता है तथा इसमें वर्तमान अध्ययन के सन्दर्भ का एक महत्वपूर्ण पक्ष देखा जाना चाहिए.

- आधुनिक दुनिया में 'ज्ञान' और 'अस्तित्व' का अलगाव साइंस, पूंजी और राज्य के उद्भव के काल से होता है। इन्हें 'सामान्य जीवन' के उल्लंघन के मुख्य स्रोतों के रूप में देखने से उस ओर बढ़ने के रास्ते खुलते हैं जहां ज्ञान और अस्तित्व अलग नहीं होते। तब लोकविद्या और सामान्य जीवन अविभाज्य दिखाई देते हैं। एक के बिना दूसरे का संज्ञान संभव नहीं है। सामान्य जीवन वह स्थान है जहाँ लोकविद्या होती है और लोकविद्या वह है, जिसे सामान्य जीवन में ज्ञान कहा जाता है। यानी समाज में एक व्यापक आमूल बदलाव का आन्दोलन अर्थात **एक बुनियादी राजनीतिक आंदोलन लोगों के ज्ञान आंदोलन से अलग नहीं हो सकता। यही ज्ञान आन्दोलन स्वदेशी दर्शन और स्वराज के बीच की कड़ी है.**

6. अनुसंधान की पद्धति

- इस अनुसंधान का घर किसानों और कारीगरों के बीच होगा, रोज़ की कमाई करने वाले ठेले-गुमटी-पटरी वालों तथा मजदूरों के बीच होगा, बड़े पैमाने पर स्त्रियों के विचारों, कार्यों, अनुभवों में होगा, एक शब्द में कहें तो उनके जीवन में होगा. देश की मुख्यधारा से सबसे ज्यादा कटे हुए आदिवासी समाज के लोग हैं और इस अनुसन्धान में उनके जीवन और तौर-तरीकों का बड़ा स्थान होगा.

- संतों के अनुयायियों से बातचीत शोध का एक प्रमुख हिस्सा होगा. जैसे गोरखनाथ, गुरुनानक, कबीर साहब, संत रविदास, संत तुकाराम, बासवअन्ना और तमिल, मलयालम, तेलुगु, उरिया, बंगला, तथा विविध प्रदेशों के संत.

- यह अनुसंधान मोटे तौर पर **बहुजन ज्ञान संवाद** होगा, जिसकी एक मूल मान्यता यह होगी कि बहुजन समाज एक ज्ञानी समाज है तथा यह अनुसंधान उसके ज्ञान को नए समकालीन रूपों में प्रस्तुत करेगा.

- बहुजन-समाज के व्यावहारिक ज्ञान, वस्तुओं को बनाने के शिल्प और कला से तो सब परिचित हैं तथापि इन दक्षताओं की पृष्ठभूमि में इनका अपना दर्शन होता है. यह संवाद इस दर्शन को सार्वजनिक पटल पर प्रस्तुत करने के रास्ते बनाएगा.

- यह अध्ययन संवाद के रूप में किया जायेगा. तरह तरह के संवाद. एक-एक व्यक्ति से अलग-अलग बात करना, समूह में चर्चा करना, स्थानीय बाज़ारों और गांवों तथा बस्तियों को इस अध्ययन की दृष्टि से गहराई से देखना, रिसर्च करने वालों द्वारा एक दूसरे का स्थान लेते रहना व आपस में विस्तार से चर्चा करना आदि.

- सामान्य लोगों के साथ वार्ता का एक बड़ा हिस्सा इस बात का होगा कि प्रयास के साथ उन्हें लोकस्मृति, कुलस्मृति, ग्रामस्मृति आदि के संसार में ले जाया जाये और स्मृति के उन विश्वों में उत्खनन (excavation) के लिए प्रेरित किया जाये. यह एक महत्वपूर्ण प्रयोग होगा और यदि इसके जरिये सामान्य जीवन में संगठन, प्रबंधन, व्यवस्था और ज्ञान के प्रश्नों पर कुछ नया प्रकाश पड़ता दिखाई दे तो इसका विस्तार किया जायेगा. अध्ययन के दौरान इसकी जांच सतत चलती रहेगी. इस जांच का रूप भी प्रमुखतः लोगों से और आपस में वार्ता, गहराई से चिंतन और संत परंपरा से सन्दर्भों के मार्फ़त आकार लेगा.

- इन विषयों पर लिखित शब्द की खोज होगी. इसके प्रमुख रूप से निम्नलिखित स्रोत हैं.
    - संत वचन और कार्य
    - भाषाई साहित्य. उदाहरण के लिए हिंदी क्षेत्र में प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु, हजारीप्रसाद, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', शुकदेव सिंह आदि.
    - अंग्रेजों द्वारा किये गए लेखन, जो उनके लेखकों के हो सकते हैं अथवा शासन की (सर्वेक्षण) रिपोर्ट के रूप में हो सकते हैं.
    - सामाजिक पंचायतों/संगठनों की कार्यवाही की रिपोर्टें.
    - प्रमुख जन आन्दोलन और उनके विचार, प्रेरणा, मुद्दे और संगठन के प्रकार
    - भाषा, कला और दर्शन की दुनिया के विवरण.
- **सक्रिय कर्म:** इस शोध का एक हिस्सा सक्रिय कर्म का होगा. विशेष रूप से लोकविद्या आंदोलन, बौद्धिक सत्याग्रह और ज्ञान पंचायत तथा इस शोध कार्य के बीच जीवंत लेन-देन का सम्बन्ध होगा.

7. वित्त

कितने पैसे की ज़रूरत पड़ेगी और कहाँ से आयेंगे इसका अनुमान अभी नहीं है. विद्या आश्रम अपने अनुदान से एक बहुत छोटी-सी शुरुआत कर सकता है. इसलिये इस रीसर्च प्रोग्राम के लिए आवश्यक वित्त और उसके स्रोतों के बारे में अपने उन मित्रों से बात करनी है जो वित्त प्रबंधन करते रहे हैं.